ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

तबला एवं कथक नृत्य के अन्तर्सम्बन्धों का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (तबला एवं कथक नृत्य की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)

द्विजेश उपाध्याय*[1], डॉ0 मुकेश चन्द्र पन्त[2]
*[1] शोध छात्र-संगीत, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत।
[2] संगीत शिक्षक, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड,भारत।

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.573006

सारांश *- तबला एवं कथक नृत्य दोनों ताल प्रधान हैं, इस कारण इनमें सामंजस्य प्रतीत होता है। पूर्व में नृत्य के साथ मृदंग की संगत होती थी। किन्तु बाद मे नृत्य में जब श्रृंगारिकता, चमत्कारिकता, रंजकता आदि पहलुओं का समावेश हुआ तो पखावज की गंभीर, खुली व जोरदार संगत इन पहलुओं से सामंजस्य नहीं बैठा पाई। ऐसे में कथक नृत्य के साथ संगति के लिए तबला वाद्य का प्रयोग किया गया जिसे मृदंग(पखावज) का ही परिष्कृत एवं विकसित रूप माना जाता है। तबला वाद्य की संगत, नृत्य के लगभग सभी पहलुओं को सही रूप में प्रस्तुत करने में सफल साबित हुई। कथक नृत्य की संगति में पूरब बाज, मुख्यत: लखनऊ व बनारस घराने का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कथक नृत्य की संगति के लिए तबला वादकों द्वारा नृत्य के वर्णों, वर्ण समूहों, रचनाओं आदि के अनुरूप ही वर्णों, वर्ण समूहों, रचनाओं का निर्माण व चयन किया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि समय के साथ-साथ तबला वादन सामग्री का विकास होता चला गया। कथक-नृत्य के वर्तमान स्वरूप को देखने से यह तथ्य भी उजागर होता है कि कथक-नृत्य एवं इसकी नृत्य सामग्री(रचनाओं) के विकास में तबला वादन सामग्री की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस आधार पर दोनों ही एक-दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं। संगीत विद्वान भी इस तथ्य का समर्थन करते है कि जहाँ एक ओर तबले की रचनाओं का कथक नृत्य को समृद्ध करने में योगदान रहा है वही दूसरी ओर कथक की विभिन्न पदाघातों ने भी तबला वाद्य के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तथ्यों के आधार पर कथक नृत्य एवं तबला के पुनरूद्धार का काल 1700 शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि तबला शैली एवं कथक नृत्य का विकास साथ-साथ हुआ। कथक नृत्य के साथ तबला संगति के कारण तबला वादन सामग्री(रचनाएँ) एवं कथक नृत्य सामग्री(रचनाएँ) का विकास एवं विस्तार भी साथ-साथ होता चला गया। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य तबला एवं कथक नृत्य की रचनाओं के अन्तर्सम्बन्धों के विकास का अन्वेषण एवं विश्लेषण करना है।*

मुख्य शब्द – पूरब बाज, उठान, आमद, पेशकार, कायदा, रेला, पलटा, गत, चलन, परन, तिहाई।

Cite This Article: द्विजेश उपाध्याय, डॉ0 मुकेश चन्द्र पन्त. (2017). "तबला एवं कथक नृत्य के अन्तर्सम्बन्धों का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (तबला एवं कथक नृत्य की रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 5(4), 339-351. https://doi.org/10.5281/zenodo.573006.

भूमिका :-

गीतं वाद्यं नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते। (संगीत रत्नाकर)

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

अर्थात गायन, वादन एवं नृत्य तीनों मिलकर ही संगीत कहलाते हैं। पृथक रूप में गायन, वादन एवं नृत्य को संगीत नहीं कहा जा सकता है। वस्तुत: नृत्य वाद्य का और वाद्य गायन (गीत) का अनुगमन करते हैं। कोई भी संगीत तब पूर्णता प्राप्त करता है जब गायन उपयुक्त राग-रागिनी के अुनसार हो, गायन के अनुसार वाद्य भी उसका अनुसरण करें और गीत के भावों को नृत्य की मुद्राओं द्वारा प्रदर्शित किया जाए। गायन, वादन एवं नृत्य तीनों कलाएँ भिन्न होते हुए भी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

तबला एवं कथक नृत्य का प्रारम्भ से ही इनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है क्योंकि दोनों विधाएँ ताल व लय प्रधान हैं। तबला एवं कथक नृत्य का इतिहास लगभग 400 वर्षों से पुराना नहीं है। ये दोनों विधाएँ समानान्तर चलती रही और एक-दूसरे को समृद्ध करने एवं एक-दूसरे के विकास में दोनों विधाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

तबले की उत्पत्ति एवं विकास :–

उत्पत्ति - वर्तमान तक संगीत जगत इस परिणाम पर नहीं पहुँच सका है कि तबले की उत्पति कब, कैसे और किसके द्वारा हुई। इस संबंध में संगीत विद्वानों के विभिन्न तथ्यों के आधार पर अपने-अपने मत हैं। एक मतानुसार मृदंग को ही काटकर इसके दोनों भागों को खड़ा करके बजाया गया। मृदंग के दोनों भाग काटने पर भी बोले अतैव तब भी बोला। इसका अपभ्रंश हो कर तब(भी)+ बोला = तब बोला > तबोला > **तबला** शब्द प्रचलित हुआ। परन्तु मृदंग से पूर्व भरत कालीन त्रिपुष्कर वाद्य संगीत में लय एवं ताल हेतु प्रयुक्त होता था। इसके तीन प्रकार थे उर्ध्वक, आलिंग्य एवं आंकिक। उर्ध्वक एवं आलिंग्य खड़े थे एवं आंकिक पुष्कर लेटा हुआ था। अत: मृदंग को काटने की बात तर्क संगत नहीं लगती, जब उर्ध्वक एवं आलिंग्य पुष्कर वाद्य पूर्व से ही विद्यमान हों। यह सम्भव है कि तबला त्रिपुष्कर वाद्य के उर्ध्वक एवं आलिंग्य से एवं मृदंग अथवा पखावज आंकिक से प्रेरित होकर बने हों।

एक अन्य मतानुसार तबले की उत्पति भरत कालीन दुर्दुर वाद्य से मानी गई है। दाएं एवं बाएं भाग से मिलकर ही तबले का स्वरुप बनता है और दुर्दुर वाद्य दो भागों में नहीं था। अतः यह मत भी तर्क संगत नहीं लगता।

संगीत विद्वानों द्वारा फारस के एक अवनद्य वाद्य 'तबल' से भी 'तबला' का सम्बन्ध माना गया है, जिसको सिकन्दर ने फारस जीतने के बाद बनाया था। मूल रूप से 'तबल' अरबी शब्द था जिसका प्रयोग बाद में फारसी भाषा में किया जाने लगा। किन्तु इस मत पर भी सहमति नहीं बन पाई। अरब की एक किवदंती के अनुसार संगीत के विद्वान 'लमक' के पुत्र 'टुबुल' ने 'तबल' वाद्य का अविष्कार किया था, जो बाद में तबला नाम से जाना जाने लगा। यह मत भी संगीत जगत में मान्य नहीं हो पाया।

एक अन्य मतातानुसार 'त' से ताल, 'ब' से बोल एवं 'ल' से लय अर्थात ऐसा वाद्य जिसमें लय एवं ताल, वाद्य पर बजने वाले बोलों से प्रदर्शित हो तबला कहलाया। किन्तु यह मत प्राचीन न होकर तबला वाद्य के स्थापित होने के बाद का लगता है, जिसका प्रयोग वाद्य को सरल भाषा में समझाने हेतु किया गया हो। अत: यह मत भी तर्क संगत नहीं लगता।

कुछ विद्वान 13वीं शताब्दी के हजरत अमीर खुसरो को तबले के आविष्कारक मानते हैं। इसका उल्लेख हकीम मोहम्मद करम इमाम ने अपनी पुस्तक 'मऊदन-ऊल-मूसीकी' में किया है। यद्यपि 'तबल' वाद्य ढोल एवं नगाड़े से सम्बन्धित माना गया है। हजरत अमीर खुसरो ने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में 'तबला' वाद्य का कोई उल्लेख नहीं किया। तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक अवनद्य वाद्य 'तबला' का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि 'तबला' वाद्य तेरहवीं शताब्दी के हजरत अमीर खुसरो से संबंधित न होकर अठारवीं शताब्दी के लगभग स्थापित हुआ।

अठारवीं शताब्दी में मुहम्मद शाह रंगीले के समय में खुसरो खाँ हुए, जो प्रसिद्ध ख्याल रचियता नेमत खाँ (सदारंग) के छोटे भाई एवं शिष्य थे। सुबोध नन्दी जी ने अपनी पुस्तक 'तबलार कथा' में बंगाल के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ गोपेश्वर बन्दोपाध्याय के एक पत्र का उल्लेख किया है। इसमें उन्होंने अठारवीं शताब्दि के इस खुसरो खाँ को तबला का आविष्कार माना है एवं इनको द्वितीय अमीर खुसरो के नाम

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

से संबोधित किया है। गोपेश्वर बन्दोपाध्याय जी के पत्रानुसार – ''सम्राट अलाउद्दीन की सभा के अन्यतम विद्वान अमीर खुसरो खाँ को तबला आविष्कारक कह कर अनेक लोग भूल करते हैं। मुगल बादशाह द्वितीय के समय सन् 1738 में रहमान खाँ नामक विख्यात पखावजी के पुत्र द्वितीय अमीर खुसरो ने कुछ दिन ख्याल गान सीखा था एवं इसी की संगत करने के लिए वर्तमान तबला वाद्य का अविष्कार किया।''

गोपेश्वर बंदोपाध्याय जी के अनुसार - ''विष्णुपुर के विख्यात गायक स्वर्गीय गदाधर चक्रवती के छोटे भाई स्वर्गीय मुरलीधर चक्रवती दिल्ली गए थे एवं सबसे पहले उन्होंने सदारंग एवं उनके शिष्य अचपल से ख्याल गान सीखा। वे जब विष्णुपुर लौटे, तब मेरे पिता स्वर्गीय अनन्त लाल बंधोपाध्याय को बताया कि जब सदारंग ने ख्याल की रचना की तो प्रारम्भ में उसके साथ पखावज की संगत होती थी। परन्तु सदारंग को ख्याल गायन के साथ पखावज की संगत उपयुक्त नहीं लगी। तब उनके शिष्य द्वितीय अमीर खुसरो ने तबला वाद्य की रचना की।'' उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि मोहम्मद शाह रंगीले के समय के अमीर खुसरो (द्वितीय) ही 'तबला' वाद्य के आविष्कारक हैं न कि अलाउद्दीन खिलजी के समय के हजरत अमीर खुसरो। तबला वादन शैली ख्याल गायकी एवं तन्त्रकारी वादन शैली के साथ ही स्थापित हुई तथा समय के साथ इसकी शैली विकसित होती चली गई।

सभी मतों, तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल में तबला वाद्य एवं वादन शैली के समरूप किसी वाद्य का न तो उल्लेख प्राप्त होता है न ही कोई साक्ष्य। तबला वाद्य का इतिहास लगभग 300-400 वर्षों से पुराना नहीं है, किन्तु यह कहा जा सकता है कि तबला, मृदंग(भरत ने इसे त्रिपुष्कर वाद्य कहा है) से प्रेरित होकर बना होगा। इसके दाएँ भाग को स्वर में मिलाया जाता था एवं इसमें मिट्टी का लेप लगाया जाता है तथा बाएँ वाले भाग में आटा लगाया जाता था। बाद में दाएँ भाग में मिट्टी के लेप के स्थान पर लोहे का चूर्ण लगाया जाने लगा एवं बाएँ भाग पर आटे का ही प्रयोग करते रहे। पंजाब में आज भी कहीं-कहीं बाएँ तबले पर आटा लगाने की परम्परा(गुरुद्वारों में रागी संगीत के साथ) देखी जाती है। तबला का पंजाब घराना, पंजाब के पखावज घराने से ही विकसित माना जाता है।

विकास - यह सर्वमान्य है कि ख्याल गायन की संगत के लिए तबला वाद्य एवं इसकी वादन शैली का निर्माण हुआ। कालान्तर में तबले की विभिन्न वादन शैली विकसित हुई और यह शैलियां तबले के घरानों के नाम से जानी जाने लगी। तबले की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं किन्तु तबला वाद्य के मूल प्रवर्तक के रूप में सिद्धार खाँ ढाढ़ी को ही मान्यता प्राप्त है। अमीर खुसरो को तबले की रचना का श्रेय दिया जाता है किन्तु इसकी वादन शैली स्थापित करने एवं विकसित करने का श्रेय उस्ताद सिद्धार खाँ ढाढ़ी को दिया जाता है। सिद्धार खाँ ढाढ़ी ने दिल्ली घराने की नींव रखी एवं दिल्ली घराने को ही तबले का सर्वप्रथम घराना माना जाता है। दिल्ली घराने के वंशजों ने अलग-अलग स्थानों पर जाकर एवं दिल्ली घराने की वादन शैली में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर अजराड़ा एवं लखनऊ घराने की नींव रखी। इसी प्रकार लखनऊ घराने के शिष्यों द्वारा फर्रूक्खाबाद घराना एवं बनारस घराने की नींव डाली गई। पंजाब घराना पखावज वादन शैली के आधार पर स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है। इस प्रकार तबले के मुख्य छः घराने माने जाते हैं - दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रूक्खाबाद, बनारस एवं पंजाब। लखनऊ व इससे निकले अन्य घराने फर्रूक्खाबाद व बनारस पूरब बाज के अन्तर्गत आते हैं। दिल्ली के पूर्वी भाग में होने के कारण इनकी शैली पूरब बाज कहलाई। प्रत्येक घराने के विकास क्रम में तबले की वादन शैली भी विकसित होती चली गई। जिसका परिणाम है कि वर्तमान में तबला लोकप्रिय अवनद्य वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित है।

तबला वाद्य एवं इसकी वादन शैली के विकास में अनेक अवनद्य वाद्यों जैसे पखावज, ढोलक, नक्कारा, ताशा आदि की वादन शैली का महत्वपूर्ण योगदान है। पखावज पर बजने विभिन्न रचनाएं जैसे रेले, गतें, परनें आदि के अनुसार तबले के अनुसार वर्ण बना कर रेलों, गतों एवं परनों का निर्माण किया गया। दिल्ली घराने का मुख्य रुप से कायदा, पेशकार के विकास में योगदान रहा है। बाद में सभी घरानों ने इन्हें अपने घराने की वादन शैली के अनुसार विकसित किया। आड लय की रचनाओं के विकास में अजराडा घराने का योगदान रहा है। गत के विकास में मुख्य रुप से लखनऊ एवं फर्रुखाबाद घराने का योगदान रहा है। परन के विकास में मुख्य रुप से लखनऊ, बनारस एवं पंजाब घराने का योगदान रहा है। ढोलक एवं ताशा की वादन शैली से तबले पर लग्गी-लडी का विकास हुआ है। तबले की वादन

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

शैली का जो स्वरूप हम वर्तमान में देख रहे हैं इसका श्रेय सभी घरानों के तबला वादकों को जाता है जिनके अथक प्रयासों के कारण इसकी वादन शैली इतनी समृद्ध हो पाई है।

कथक का अर्थ, उत्पत्ति, विकास, वर्तमान स्वरूप :-

अर्थ - उत्तर भारत का प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य कथक है। कथक शब्द का अर्थ है 'कथा करने वाला या कथा कहने वाला'। श्री लक्ष्मीनारायण गर्ग के अनुसार *'प्राचीन काल मे कथावाचकों द्वारा मन्दिर में पौराणिक कथाएँ हुआ करती थी। कथा के बाद जब कीर्तन होता था, तो उसमें भरत या नट लोग नृत्य करते थे। बाद में इन भरत या नट जाति के लोगों में कुछ दूषित तत्व आ गए, जिनके कारण उनका सामाजिक बहिष्कार हो गया। इसके बाद इन नटों ने स्वयं कथा कहकर नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया ताकि उनकी जीविका चलती रहे। ब्राह्मण जाति के लोगों की संख्या नटों में अधिक थी, अतएव यही लोग 'कथक' या 'कत्थक' कहलाने लगे।'*

संस्कृत में 'कथक' का एक पर्यायवाची 'कुशीलव' मिलता है। कुशीलव शब्द का संबंध कथकों के उद्भव से भी माना जाता है। मान्यतानुसार मुनि वाल्मीकि ने लव-कुश को सर्वप्रथम संगीतमय रामायण गान की शिक्षा प्रदान की थी। लव और कुश ने भगवान राम के दरबार में महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' गाई और जनता को प्रभावित कर अपने छीने हुए अधिकार प्राप्त किए थे। जिन कथाकारों ने लव-कुश की संगीतमय कथा करने का अनुसरण किया वे कुशीलव कहलाने लगे।

भारत में प्राचीन काल में कथकों को मंदिर में नियुक्त किया जाता था। मंदिरों में ये कथक संगीत, नृत्य एवं अभिनय के माध्यम से पौराणिक कथाओं का वर्णन करते थे। कुछ कथिक इन कार्यों के अतिरिक्त देवदासियों को नृत्य की शिक्षा भी दिया करते थे। मान्यता यह है कि इन कथकों द्वारा किए जाने वाला एवं सिखाए जाने वाला नृत्य ही कथक नृत्य है। अब यह परम्परा लुप्त प्राय: सी हो गई है और स्फुट रूप में अयोध्या तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में देखने को मिलती है।

उत्पत्ति एवं विकास - कथक नृत्य के उद्भव संबंधी अनेक मान्यताएं हैं। एक मान्यतानुसार 'स्वामी हरिदास ने जिन्हें गायन सिखाया वे गन्धर्व बनें जिन्हें वादन सिखाया वे किन्नर बने तथा जिन्हें नृत्य सिखाया वे कथक बने।'[1] किन्तु इस बात का उल्लेख किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं है। दूसरी मान्यतानुसार ईश्वरी प्रसाद को इस नृत्य शैली का जन्मदाता माना जाता है। इस विषय का उल्लेख भी किसी ग्रन्थ में नहीं है। लेखकों ने इन्हें एवं इनके वंशजों को नृत्य की इस शैली का पुनरूद्धारक माना है। ईश्वरी प्रसाद जी कथक नृत्य के लखनऊ घराने के जन्मदाता हैं। तीसरी मान्यतानुसार कथक नृत्य का जन्म वैष्णव धर्म द्वारा हुआ किन्तु इस तथ्य की सत्यता के भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। वैष्णवों धर्म के प्रचार में साधना के रूप में इस नृत्य का प्रयोग हुआ जिस कारण यह विकसित भी हुआ। कथक नृत्य के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह 'कथक' पर अवलम्बित है तथा इन कथकों ने कथाओं के प्रस्तुतिकरण के लिए जिस नृत्य शैली की रचना कर उसका प्रयोग किया वह 'कथक नृत्य' है। वर्तमान में जो कथक नृत्य का स्वरूप है वह वर्षों के विकास क्रम का परिणाम है।

13वीं शताब्दी के लगभग, मुगल सत्ता के प्रवेश से भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला आदि बहुत गहराई से प्रभावित हुई तथा इसका प्रभाव कथक नृत्य पर भी पडा। मंदिरों के टूटने से कथक बिखरने लगे तथा आश्रय के लिए किसी राजा या नवाब के दरबार में पहुँच गए। इन कथकों ने राजा या नवाब की रूचि अनुसार अपने नृत्य में बदलाव किए तथा साथ ही नृत्य में चमत्कार प्रधान रचनाओं का भी सृजन किया। यहीं से कथक नृत्य का ताल प्रधान एवं श्रृंगारिक रूप विकसित होता चला गया। *''गायन व नृत्य के माध्यम से कथा की प्रस्तुति करने वाले कलाजीवी 'कथक' कहलाए, जिन्होंने 'कथक नृत्य' या नटवरी नृत्य नाम से ऐसी शैली को जन्म दिया, जिसमें भाव प्रधान, ताल प्रधान और चमत्कार प्रधान तत्वों का समावेश था।''*[2]

इन कारणों तथा देश, काल व अन्य परिस्थितियों के प्रभाव से यह वेश्याओं, भाण्डों और बहुरूपियों के संपर्क में आ गए तथा इनमें चारित्रिक दोष भी पनपने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि कथक ईश्वर उपासना के साधन से मनोरंजन का साधन बन कर रह गया।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

समाज में इसका यह प्रभाव पडा कि इसे निम्न कोटि का माना जाने लगा। श्री केशवचंद वर्मा के अनुसार 'विगत शताब्दियों में यह नृत्य जिस रूप में राजाश्रय के माध्यम से उभरा उसमें लोकरंजन पक्ष का प्रतिनिधित्व ही अधिक था और इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे लोगों की यह धारणा सी बन गई कि यह 'भारतीय नाच' का निकृष्टतम उदाहरण है। इस भ्रामक धारणा को बनाने में तत्कालीन नर्तक समाज का भी बहुत योगदान रहा है।'

मान्यतानुसार इसी काल में संगीत में 'घरानेदारी' परम्परा का प्रारम्भ हुआ। हिन्दु राजाओं के दरबारी कथकों की परम्परा 'जयपुर घराने' के नाम से जानी जानी लगी तथा मुगल दरबार में आश्रयप्राप्त कथकों की परम्परा लखनऊ घराने के नाम से जानी गई। कथक नृत्य का स्वरूप जो आज हमारे सामने है, वह लगभग तीन सौ से चार सौ वर्षों में विकसित हुआ है।

स्वरूप - प्रदर्शन के आधार पर कथक नृत्य को मुख्य दो भाग में विभाजित कर सकते हैं – नृत्त पक्ष और अभिनय या भाव पक्ष। नृत्त पक्ष से ही कथक नृत्य का प्रारम्भ होता है। सामान्यत: नृत्त पक्ष के अन्तर्गत ठाट, आमद, बोल, तोड़े-टुक्ड़े, परन, ततकार का प्रदर्शन किया जाता है। अभिनय या भाव पक्ष में गत निकास, गत-भाव, ठुमरी भाव, पदाभिनय का प्रदर्शन होता है। गत-भाव में नर्तक प्रस्तुत कहानी के भिन्न-भिन्न पात्रों का स्वयं अभिनय करता है। ठुमरी भाव व पदाभिनय में नर्तक ठुमरी, दादरा, भजन के शब्दों व अर्थ को विभिन्न मुद्राओं व भावों से व्यक्त करता है।

कथक नृत्य की विशेषताओं के विषय में डॉ0 पुरू दाधीच लिखते हैं - *'जैसे कि यो तों सभी भारतीय नृत्य शैलियों के कलाकार अपने पैरों में घुँघरू बाँधते हैं किन्तु इन घुँघरूओं का जैसा वास्तविक प्रयोग कथक शैली में किया जाता है वह संसार में अद्वितीय है। तबला-पखावज से निकलने वाले एक-एक बोल को ये कथक नर्तक बहुत सफाई के साथ अपने घुँघरूओं से प्रतिध्वनि करते हैं। दूसरी बात असंख्य भ्रमरियों का प्रदर्शन हैं। प्राय: प्रत्येक बोल के अन्त की तिहाई इन चक्करों से ही सम्पन्न होती है। भ्रमरी या चकरी के भी अनेक प्रकार हैं जैसे- चक्री, अर्धचक्री, विपरीत चक्र आदि।'*[3]

किसी कहानी अथवा वाक्य के अर्थ एवं भाव को अभिनय के माध्यम से प्रकट कर उपयुक्त 'रस' की उत्पत्ति करना नाट्य कहलाता है। ताल और लय के साथ अंग संचलन नृत्त के अन्तर्गत आता है। इसमें भावनाओं का प्रदर्शन गौढ हो जाता है तथा लय के साथ अंग संचलन प्रमुख होता है। नाट्य एवं नृत्त का संयुक्त रूप 'नृत्य' कहलाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब किसी शब्द, वाक्य या कहानी का अभिनय ताल और लय के साथ किया जाता है तो उसे नृत्य कहते हैं।

वर्तमान में कथक नृत्य के तीन घराने प्रचलित हैं:- 1. लखनऊ घराना 2. जयपुर घराना 3. बनारस घराना

कथक नृत्य का लखनऊ घराना मुगल संस्कृति से प्रभावित है तथा भाव प्रधान है। ऐसा माना जाता है कि इलाहाबाद जिले के हण्डिया तहसील के चुलबुला ग्राम के निवासी श्री ईश्वरी प्रसाद मित्र ने इस घराना का प्रारम्भ किया था। कालका प्रसाद एवं बिन्दादीन महाराज ने इस घराने को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लखनऊ घराने में छोटे तोड़े व टुक्ड़े नाचने का प्रचलन है । इस घराने में पैरों से बोलों की निकासी पर अन्य घरानों की अपेक्षा कम ध्यान दिया जाता है। तथा टुकडो में अंगों की खूबसूरत बनावट को अधिक महत्व दिया जाता है। लखनऊ घराने में नृत्य के बोलों, पखावज की परनें और प्रिमलू के बोल नाचने का अधिक प्रचलन है। लखनऊ घराने की प्रमुख विशेषता है कि यहाँ भाव ठुमरी गाकर बताया जाता है। बिन्दादीन महाराज द्वारा इस कार्य का प्रचार किया गया।

भानुजी को जयपुर घराने का प्रथम प्रवर्तक माना जाता है। कथक का जयुपर घरना कथक नृत्य की राजस्थानी परंपराओं से संबधित है। इस घराने के नर्तक मुख्यत: हिन्दु राजदरबारों से संबंधित रहे। इस कारण कथक की अनेक प्राचीन परंपराएँ इस घराने में आज भी संरक्षित हैं। इस घराने के नर्तक तत्कार में कठिन लयकारियों का प्रदर्शन बहुत सरलता से करते हैं। इस घराने में अन्य घरानों की अपेक्षा पैरों की सफाई पर हस्तकों से अधिक ध्यान दिया जाता है। इस घराने में विभिन्न प्रकार के बोलों जैसे नृत्य के बोल, प्रिमलू, तबला-

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

पखावज के बोल, पक्षीपन, जातिपरन आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। सात्विक भावों का प्रदर्शन किया जाता है अत: इस कारण भजन या पदों पर भाव प्रदर्शित किया जाता है ठुमरी पर नहीं।

कथक का बनारस घराना 'जानकी प्रसाद घराना' नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि जानकी प्रसाद तबले के बनारस घराने के संस्थापक पं0 राम सहाय के भाई थे। एक अन्य मान्यतानुसार बनारस घराना 'सांवलदास घराने' से संबंधित है और जानकी प्रसाद सांवलदास के ही वंशज थे जो बाद में बनारस बस गए थे। यह घराना अन्य घरानों के अपेक्षा उतना लोकप्रिय नहीं है। बनारस घराना मुख्यत: शुद्ध नृत्य के बोल, तत्कार एवं सात्विक भाव पर आधारित है। पैरों की निकासी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें तत्कार में एड़ी का अधिक प्रयोग किया जाता है। इस घरने में गतों का निकास कम हैं। चक्करदार गतें भी इस घराने में विशेष रूप से सुनने को मिलती हैं।

तबला एवं कथक नृत्य की रचनाओं का अन्तर्सम्बन्ध :-

वैसे तबले की उत्पत्ति, विकास एवं इसकी वादन सामग्री के विकास में अनेक अवनद्य वाद्यों जैसे पखावज, ढोलक, नक्कारा, ताशा आदि की वादन शैली, ख्याल गायन व अन्य गायन शैलियाँ के साथ संगत, सितार व अन्य स्वर वाद्य के साथ संगत प्रमुख कारण रहे हैं। लेकिन तबला वादन सामग्री(रचनाओं) के विकास का एक प्रमुख कारण कथक नृत्य के साथ संगति भी है। पूर्व में नृत्य के साथ पखावज से संगत दी जाती थी। किन्तु बाद मे नृत्य में जब श्रृंगारिकता, चमत्कारिकता, रंजकता आदि पहलुओं का समावेश हुआ तो पखावज की गंभीर, खुली व जोरदार संगत इन पहलुओं से सामंजस्य नहीं बैठा पाई। ऐसे में तबला वाद्य की संगत, नृत्य के लगभग सभी पहलुओं को सही रूप में प्रस्तुत करने में सफल साबित हुई। तबला-वादकों व विद्वानों के अथक परिश्रम व प्रयासों का ही परिणाम है कि आज तबला वाद्य संगीत की प्रत्येक विधा गायन, वादन एवं नृत्य में प्रमुख संगत ताल वाद्य के रूप में प्रयुक्त होता है।

संगीत विद्वानों के अनुसार कथक नृत्य के साथ तबला वाद्य की संगति पिछले लगभग 300-400 वर्षों से चली आ रही है। कथक नृत्य के साथ संगति करते-करते तबला की विभिन्न वादन सामग्री का भी उद्भव एवं विकास हुआ है। कथक नृत्य की संगति में पूरब बाज के अन्तर्गत तबले के लखनऊ घराने को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इसी के परिणामस्वरूप तबले के लखनऊ घराना को 'नचकरन बाज' के नाम से भी जाना जाता है। इसका मुख्य श्रेय उस्ताद आबिद हुसैन खाँ को जाता है। विभिन्न घरानों के तबला वादकों के अथक प्रयासों व परिश्रम के परिणामस्वरूप तबले की वादन शैली का विकास हो पाया एवं इसकी वादन सामग्री समृद्ध हो पाई ।

तबले में मृदंग(पखावज) एवं विभिन्न लोक अवनद्य वाद्यों जैसे ढोलक, ताशा, दुन्दुभि, नाल, नगारा आदि के अनेक पटाक्षर का भी समावेश किया गया और इनसे अनेक प्रकार की रचनाओं का निर्माण भी तबला वादकों द्वारा किया गया। इन सबका ही परिणाम है कि तबला अवनद्य वाद्यों के विभिन्न पहलुओं पर खरा उतरता है तथा इसको अन्य अवनद्य वाद्यों की अपेक्षा उच्च स्थान प्राप्त है।

तबला की वादन सामग्री या रचनाओं को मुख्यत: दो वर्ग मे बाँटा गया है- विस्तारशील रचनाएँ एवं अविस्तारशील रचनाएँ।

(क) विस्तारशील रचनाएँ - विस्तारशील रचनाओं के अन्तर्गत वह रचनाएँ आती हैं जिनके मूल स्वरूप का विस्तार किया जा सकता है। ऐसी रचनाओं में भरी एवं खाली के वर्णों का एक निश्चित क्रम होता है और इस कारण रचना को दोहराया जाना संभव होता है। इस प्रकार की रचनाएँ ताल की प्रथम मात्रा अर्थात सम से आरम्भ होती हैं तथा अन्तिम मात्रा पर समाप्त होती हैं। इस कारण इनकी पुनरावृत्ति संभव होती है। तबले की रचनाओं मे पेशकार, कायदा एवं रेला विस्तारशील रचनाओं में प्रमुख हैं।

(ख) अविस्तारशील रचनाएँ - अविस्तारशील रचनाओं के अन्तर्गत ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनका विस्तार संभव नहीं होता है। जैसे उठान, चलन, गत, मोहरे, मुखडे, टुकडे, परनें, चक्कदार, तिहाईयाँ आदि। गत का कहीं-कहीं विस्तार देखने को मिलता है।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

1. उठान एवं आमद - उठान को कथक नृत्य की आरम्भिक रचना आमद का ही रूप माना जाता है। पूरब बाज के तबला वादक अपने वादन की शुरूआत सामान्यत: उठान से ही करते हैं। कथक नृत्य में आमद एक महत्वमूर्ण रचना है। परम्परानुसार आमद सदैव ठाट के बाद नाची जाती है। डॉ. पुरू दाधीच के अनुसार-'विलम्बित लय में ठाट के उपरान्त पहली बार एक पूरा बोल बना कर सम पर आना(आमद, आगमन) ही आमद कहलाता है।'[4] उठान एवं आमद दोनों का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि इन दोनों रचनाओं का विकास साथ-साथ हुआ होगा।

उठान

धिट	धिट	धागे	तिट	क्रधा	तिट	धागे	तिट	
×				2				
क्रधा	तिट	क्रधा	तिट	क्रधा	तिट	धागे	तिट	
0				3				
धाऽ	धाऽ	त्रक	धाऽ	तगि	न्न	धाऽ	त्रक	
×				2				
धाऽ	तगि	न्न	धाऽ	त्रक	धाऽ	तगि	न्न	धा
0				3				×

आमद

ता	थेई	तत	थेई	आ	थेई	तत	थेई	
×				2				
थेई	तथे	ईत	थेई	थेई	थेई	तत	तत	ता
0				3				×

2. पेशकार - पेशकार तबले की एक विशेष प्रकार की रचना है। यह लय-ताल में निबद्ध होते हुए भी अनिबद्ध सी प्रतीत होती है। कायदे व रेलों की अपेक्षा पेशकार में तबला वादक को अधिक स्वतन्त्रता होती है। पेशकार के मूल स्वरूप में विस्तार करते समय अनेक परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता होती है। लय और वजन में परिवर्तन, मूल स्वरूप के वर्ण-समूहों में परिवर्तन, तिहाईयुक्त विस्तार, कभी मात्रा की शुरूआत से तो कभी मात्रा के आधे समय से वर्णों का आरम्भ आदि अनेक प्रकार के प्रयोग पेशकार में किए जाते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण पेशकार सुन्दर रचना होने के साथ सर्वाधिक क्लिष्ट एवं जटिल रचना भी मानी जाती है। पेशकार की भाँति ही कई कथक नर्तक पदाघातों का भी विस्तार करते हैं जिसमें पेशकार की विशेषताओं का समावेश होता है, जैसे लय और वजन में परिवर्तन, तिहाईयुक्त विस्तार, मूल पदाघातों में परिवर्तन आदि। नागेश्वर लाल कर्ण के अनुसार - 'तबले के दिल्ली बाज के आरम्भ में जो पेशकार बजाया जाता है, उसी बहर(शब्द गति) पर बने कुछ बोल 'आमद पेशकार' नाम से भी कथक नृत्य में प्रचलित हैं।''[5] इस प्रकार पेशकार एवं कथक नृत्य की विशेषताओं में अन्तर्सम्बन्ध दिखाई पडता है।

पेशकार

धीऽक्ड़	धिंधा	ऽधा	धिंधा	धाती	धाती	धाधा	तिंता	
×				2				
तीऽक्ड़	तिंता	ऽता	तिंता	धाती	धाती	धाधा	धिंधा	धा
0				3				×

पलटा

धीऽक्ड़	धिंधा	ऽधा	धिंधा	धाती	धाती	धाधा	धिंधा
×				2			
तिटघिड़ा	ऽन्नधाऽ	धिंधा	धाती	धाऽकिट	तकधिंऽ	धाधा	तिंता

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

0				3				
तीऽक्ड़	तिंता	ऽता	तिंता	ताती	ताती	ताता	तिंता	
×				2				
तिटघिड़ा	ऽन्नधाऽ	धिंधा	धाती	धाऽकिट	तकधिंऽ	धाधा	धिंता	धा
0				3				×

3. कायदा एवं तत्कार - कायदा तबला वादन की एक महत्वपूर्ण रचना है। कायदे में वर्ण समूहों का प्रयोग, लय व लयकारी के नियमों, विस्तार अर्थात पलटों में मूल वर्ण समूहों का प्रयोग आदि का पालन पूरी कठोरता से किया जाता है। कायदे के विस्तार को पलटा कहते हैं। कायदे के वर्णों व वर्ण समूहों को उलट-पुलट कर पेश करना पलटा कहलाता है। कायदों के समान ही कथक नृत्य में तत्कारों का निर्माण किया जाता है एवं स्वतन्त्र रूप से भी तत्कार बढते जाते हैं। कायदा के पलटे के समरूप ही कथक नृत्य में तत्कार के पलटे किए जाते हैं। कथक नर्तक जब तत्कार के साथ इसके विस्तार को प्रस्तुत करता है तो तबला वादक भी तत्कार के अनुरूप कायदा बजाता है तथा उसका विस्तार कर संगति करता है। कायदा एवं तत्कार दोनों का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि इन दोनों रचनाओं का विकास साथ-साथ हुआ होगा।

कायदा

धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	तिना	किना	
×				2				
ताति	टता	तिट	धाधा	तिट	धागे	धिना	गेना	धा
0				3				×

पलटा

धाति	टधा	तिट	धाधा	धाति	टधा	तिट	धाधा	
×				2				
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	तिना	किना	
0				3				
ताति	टता	तिट	ताता	ताति	टता	तिट	ताता	
×				2				
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	धिना	गिना	धा
0				3				×

तत्कार

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
ता	ऽ	थे	ई	थे	ई	त	त	आ	ऽ	थे	ई	थे	ई	त	त
×				2				0				3			

तत्कार के प्रकार

1	2	3	4	5	6	7	8
तत	तत	ताऽथेई	थेईतत	तत	तत	आऽथेई	थेईतत

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

×				2			
9	10	11	12	13	14	15	16
तत	तत	ताऽथेई	थेईतत	तत	तत	आऽथेई	थेईतत
0				3			

4. गत - गत तबला वादन व कथक नृत्य दोनों की ही विशेष रचना है। गत का अर्थ अवस्था या दशा से है। कुछ विद्वानों का मानना है कि कथक नृत्य में गत, गति शब्द के अपभ्रंश रूप में प्रचारित हुआ। डॉ पुरू दाधीच के अनुसार – ''वस्तुत: देखा जाए तो गत शब्द के दोनों ही अर्थों अवस्था व गति को संयुक्त रूप से ग्रहण करने पर ही कथक नृत्य में प्रयुक्त गतों का सम्पूर्ण स्वरूप प्रकट होता है। क्योंकि गत के रूप में कथक नृत्यकार चलन के साथ ही किसी नायक या नायिका की किसी एक अवस्था को ही मुख्यत: प्रस्तुत करता है। ''[6]

कथक नृत्य में गत के दो प्रकार प्रचलित हैं - गत निकास व गत भाव। नर्तक जब पलटा लेकर किसी एक मुद्रा में निकल कर आए और उसी मुद्रा में ठाह व दुगुन लय में क्रमश: आगे व पीछे चलन चलकर दिखाए तो यह गत निकास कहलाता है। कथक नृत्य का यह अत्यन्त सुन्दर, सरस, चमत्कारिक व समृद्ध अंग विशेष रूप से लखनऊ घराने में विकसित हुआ।

डॉ0 पुरू दाधीच के अनुसार – ''जब नृत्यकार अकेला ही किसी कथानक को लेकर उसके समस्त पात्रों का अभिनय करते हुए रस-भाव की सृष्टि करता है तो उसे 'गत भाव' कहते हैं।''[7] गतभाव की विशेषता है कि इसमें समस्त अभिनय तालबद्ध होते हैं। गत भाव के विकास व विस्तार में कथक के जयपुर घराने का अधिक योगदान रहा है। लखनऊ घराने में यह संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

तबले के पूरब बाज की विशेष रचनाओं में गत का महत्वपूर्ण स्थान है। ''बाज के अनुसार बनायी गई मुलायम बोलों की ऐसी रचना जिसमें बोलों का विस्तार न किया जा सके तथा जो पढने या बजाने में छन्द या कवित्त की तरह प्रतीत हो उसे गत कहतें हैं।''[8] गतों के अंत में प्राय: तिहाई नहीं होती है, किन्तु कई गतें तिहाईयुक्त भी होती हैं। तबले की गत के कई प्रकार होतें हैं जैसे मंझेदार गत, दोमुही गत, यतियों की गत, जाति गत आदि जिनके आधार पर कथक नृत्य में भी खास प्रकार की गतों का भी निर्माण हुआ। कथक नृत्य में तबले की गतों का भी प्रदर्शन किया जाता है इसके साथ ही साथ कथक नृत्य के साथ संगति में भी तबला वादकों द्वारा गतों का प्रयोग किया जाता है।

गत

धिनगिनतकऽ	तकधिनगिनतक	धिनगिनधागेतिट	धागेतिटतीनाकेना	
×				
तकिटधाऽता	धाऽऽघेतकधिन	नातीघेघेतकधिन	धागेतिटतीनाकेना	
2				
तकिटताधिना	तिरकिटतकताऽधिना	तिरकिटतकतिरकिटतक	तिरकिटतकताधिना	
0				
ऽघेऽनत	धाऽघेऽ	नतधाऽ	ऽघेऽनत	धा
3				×

5. चलन - इसे चाला भी कहा जाता है। चाला का शब्दिक अर्थ 'चाल' है। चाल को बाँध कर उसके अनुसार नृत्य या वादन प्रस्तुत करने को चलन कहते हैं। नागेश्वर लाल कर्ण लिखते हैं – ''चलन(चाला) किसी एक ही प्रकार के बोलों को ताल की लय गति के अनसुार बाँधना और उसके बीच-बीच में अन्य बोलों का सम्पुट लगाकर उनका विस्तार करना कहा जाता है।'[9] इसकी विशेषता यह है कि इसमें विशेष गति, लय व बोलों की प्रधनता रहती है। पूरब बाज के अधिकांशत:तबला वादक इसे अत्यन्त कुशलता से बजाते हैं। विशलेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तबला एवं कथक नृत्य दोनों में चलन का प्रयोग एवं विकास साथ-साथ हुआ होगा।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

चलन

धागे	नाधी	कधी	नाड़ा	धागे	नाधी	कधी	नाड़ा
×				2			
तागे	नाती	कती	नाड़ा	धागे	नाधी	कधी	नाड़ा
0				3			

6. परन - कथक नृत्य एवं तबला वादन दोनों की रचनाओं में परन महत्वपूर्ण स्थान रखती है। परन में खुले व जोरदार वर्णों व बोलों का प्रयोग होता है, इसमें बोल दोहराते हुए चलते हैं, यह तिहाईयुक्त होती है तथा यह दो या दो अधिक आवर्तन की होती है। कथक नृत्य व तबला वादन की यह रचना पखावज से ली गई है। इसके कई प्रकार हैं जैसे सादी परन, चक्करदार परन, फरमाइशी परन, कमाली परन, एकहत्थी परन, जवाबी परन, बोल-पक्षी परन, परन-जुडी आमद, जाति परन, विभिन्न स्तुति परनें आदि । विशलेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तबला एवं कथक नृत्य दोनों के विकास के साथ-साथ परन का भी विकास हुआ होगा। निम्नलिखित परन लखनऊ की प्रचलित परनों में से एक है तथा यह तबला व कथक दोनों में समान रूप में बजाई जाती है। निम्नलिखित परन मध्यलय तीनताल में है:-

परन

धातिटधा	तिटधाधा	तिटक्रधा	तिटक्रधा	तिटधाति	टधागदि	गनथुं	थुंनग	
नगतीना	किडनगधागे	नाताकेना	घेनतडा	ऽनधाऽ	दिंता	किटतकधित	ताऽकत	
घेघेधाघे	घेधाघेघे	धाऽऽऽ	घेघेधाघे	घेधाघेघे	धाऽऽऽ	घेघेधाघे	घेधाघेघे	धा

7. तिहाई – संगीत में तिहाई एक महत्वपूर्ण रचना है। वह रचना जिसमें कोई वर्ण समूह को पूरा-पूरा तीन बार बजा कर या नाच कर सम पर आया जाए, तिहाई कहलाती है। तिहाई का प्रयोग मुख्यत: किसी रचना को समाप्त करने के लिए किया जाता है। किन्तु कथक नृत्य में विभिन्न प्रकार की तिहाईयों को नाचने की परम्परा रही है। जैसे 9 धा की तिहाई, 27 धा की तिहाई, चक्करदार तिहाई आदि। कथक नृत्य की विभिन्न प्रकार की तिहाईयों के साथ संगत हेतु इन्हीं तिहाईयों के अनुसार तबले पर भी अनेक प्रकार तिहाईयों का निर्माण एवं विकास हुआ। मुख्यत: पूरब बाज के तबला वादक अपने वादन में अनेक प्रकार की तिहाईयों का प्रदर्शन करते दिखाई देते हैं। कथक की एक सादी तिहाई निम्नलिखित है :-

तिग्दाऽदिगदिग	तिग्दाऽदिगदिग	थेईतत	थेईतत	
×				
थेई	ऽ	तिग्दाऽदिगदिग	तिग्दाऽदिगदिग	
2				
थेईतत	थेईतत	थेई	ऽ	
0				
तिग्दाऽदिगदिग	तिग्दाऽदिगदिग	थेईतत	थेईतत	थेई
3				×

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

कथक की एक विशेष प्रकार की तिहाई निम्नलिखित है :-

धातिधागेधीनागेना × 2	धाऽधातिधागे	धीनागेनाधाधा	ऽऽधातिधागे	
धीनागेनाधाधा 0	धाऽधातिधागे	धीनागेनाधाऽ	धातिधागेधीनागेना	
धाधाऽऽ 3	धातिधागेधीनागेना	धाधाधाऽ	धातिधागेधीनागेना	
धाऽधातिधागे	धीनागेनाधाधा	ऽऽधातिधागे	धीनागेनाधाधा	धा ×

27 धा की तिहाई निम्नलिखित है :-

तकिटतकिटधिन × 2	धाधाधातकि	टतकिटधिनधा	धाधातकिटत	
किटधिनधाधा 0	धाऽतकिटत	किटधिनधाधा	धातकिटतकिट	
धिनधाधाधा 3	तकिटतकिटधिन	धाधाधाऽ	तकिटतकिटधिन	
धाधाधातकि	टतकिटधिनधा	धाधातकिटत	किटधिनधाधा	धा ×

8. रेला – रेला तबले की एक महत्वपूर्ण रचना है तथा इसका प्रयोग कथक में भी किया जाता है। रेला ऐसे वर्ण समूहों से बनाया जाता है जिन्हें द्रुत लय में बजाया जा सके। यह भी एक विस्तारशील रचना है और इसका विस्तार करने में कायदे की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता होती है। कथक नृत्य की द्रुत गति की विस्तारशील रचनाओं के साथ संगत के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। कथक नृत्य की रचनाओं के साथ संगत के लिए ऐसे वर्ण समूहों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें द्रुत लय में आसानी से बजाया जा सके और वह कथक की रचना के समरूप भी हो। तीनताल में एक रेला निम्नलिखित है :-

धातिर × 2	किटतक	तिरकिट	धाति	धातिर	किटतक	तातिर	किटतक	
तातिर 0	किटतक	तिरकिट	धाति	धातिर 3	किटतक	धातिर	किटतक	धा ×

9. टुक्डा एवं तोडा - कथक नृत्य के साथ संगत के लिए तबला की वादन सामग्री में टुक्डा महत्वपूर्ण रचना है। एक आवर्तन या उससे बडी रचना जो परन से छोटी हो टुक्डा कहलाती है। यह तिहाईयुक्त व तिहाईसहित हो सकती है। नृत्य में इसे तोडा कहा जाता है। तोडे में केवल नृत्य के बोल जैसे ता, थेई, तत, दिगदिग, तिग्दा, थून आदि का प्रयोग किया जाता है। कथक नर्तक जब तोडा नाचते हैं तो तबला वादक तोडे के बोलों के समरूप तबले के बोलों से निर्मित टुक्डों का प्रयोग करता है। विशलेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि टुक्डा एवं तोडा का विकास भी साथ हुआ होगा। निम्नलिखित टुक्डा तबला तथा कथक में समान रूप से प्रसिद्ध है :-

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

टुक्डा

किटतकथुंथुं ×	नातिटता	ऽधादिंता	किटधादिंता	
कतिटधा 2	दिंताकत	तिटधादिं	ताऽक्रधे	
ऽधादिंता 0	कतिटता	ऽघेनता	धाऽकति	
टताऽघे 3	नताधाऽ	कतिटता	ऽघेनता	धा ×

तोडा

ताऽथेई ×	ततथेई	आऽथेई	ततथेई	थेईतथे 2	ईतथेई	थेईथेई	तततत	
ताऽ 0	थेई	ताऽ	ताऽथेई	ततथेई 3	आऽथेई	ततथेई	थेईतथे	
ईतथेई ×	थेईथेई	तततत	ताऽ	थेई 2	ताऽ	ताऽथेई	ततथेई	
आऽथेई 0	ततथेई	थेईतथे	ईतथेई	थेईथेई 3	तततत	ताऽ	थेई	ता ×

रचनाओं के साथ-साथ कथक नृत्य की पढन्त ने भी तबला वादकों को प्रेरित किया। कथक नृत्य प्रस्तुतिकरण में नृत्यकार रचना को नाचने से पहले उसकी पढन्त करता है। इस विशेषता को पूरब बाज के तबला वादक ने भी अपनाया और रचनाओं को बजाने से पहले उनकी पढन्त करने लगे।

निष्कर्ष - तबला एवं कथक नृत्य के ताल प्रधान होने के कारण इनके मध्य का अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट परिलक्षित होता है। तबला एवं कथक नृत्य की रचनाओं के विकास में एक-दूसरे का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दोनों का जो वर्तमान स्वरूप हम देख रहे हैं उसके पीछे कई वर्षों का विकास है। देश, काल, परिस्थितियों आदि के अनुरूप कई संगीतज्ञों ने अथक प्रयास कर इसके स्वरूप को इतना समृद्ध किया है। तबला वादकों के लिए यह चुनौतिपूर्ण था कि कथक नृत्य के साथ संगत के लिए उसी के वर्ण, रचनाओं आदि के अनुरूप वर्ण, रचनाओं आदि का निर्माण किया जाए, जिससे कथक नृत्य का सही स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके। तबला वादकों ने इस चुनौती का सामना किया और कथक नृत्य के साथ सफलतापूर्वक संगत की।

तबला वाद्य की संगत नृत्य के लगभग सभी पहलुओं को सही रूप में प्रस्तुत करने में सफल साबित हुई और इसमें पूरब बाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कथक नृत्य की संगति में पूरब बाज के अन्तर्गत तबले के लखनऊ घराने को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इसी के परिणामस्वरूप तबले के लखनऊ घराना को 'नचकरन बाज' के नाम से भी जाना जाता है। इसका मुख्य श्रेय उस्ताद आबिद हुसैन खाँ को जाता है। तबले का बनारस घराना, लखनऊ घराने की ही एक शाखा है और कथक नृत्य की संगति में इसको भी विशेष स्थान प्राप्त है। तबले की रचनाओं के विकास का एक कारण कथक नृत्य की सफल संगति भी है। कथक नृत्यकारों ने भी नृत्य सामग्री(रचनाओं) को समृद्ध करने के लिए तबले की रचनाओं से प्रेरणा लेकर नई रचनाओं का निर्माण किया और कुछ रचनाओं को मूल रूप में ग्रहण भी किया। सभी मतों एवं तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि तबला एवं कथक नृत्य की रचनाओं ने एक दूसरे को

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

प्रभावित किया जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों विधाओं का विकास होता गया, यह समृद्ध होती गई और एक दूसरे के पूरक रूप में जानी जाने लगी। इन सब प्रयासों में सभी तबला वादकों एवं कथक नृत्यकारों का अतिविशिष्ट एवं अतुलनीय योगदान रहा है।

सन्दर्भ सूची :-

1. कथक नृत्य का इतिहास, संगीत- नृत्य अंक, पृ0 32।
2. गर्ग,लक्ष्मीनारयण, 2010, कथक नृत्य, पृ0 75।
3. दाधीच, पुरू, 2010 , कथक नृत्य शिक्षा, प्रथम भाग, पृ0 20।
4. दाधीच, पुरू, 2010**,** कथक नृत्य शिक्षा, प्रथम भाग, पृ072।
5. कर्ण, नागेश्वर लाल, 2011, कथक नृत्य के साथ तबला संगति, पृ0 148।
6. दाधीच, पुरू, 2010 , कथक नृत्य शिक्षा, प्रथम भाग, पृ0 77 ।
7. दाधीच, पुरू, 2010 , कथक नृत्य शिक्षा, प्रथम भाग, पृ0 78 ।
8. कर्ण, नागेश्वर लाल, 2011**,** कथक नृत्य के साथ तबला संगति, पृ0 150।
9. कर्ण, नागेश्वर लाल, 2011**,** कथक नृत्य के साथ तबला संगति, पृ0 151।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. दाधीच, पुरू, 2010, कथक नृत्य शिक्षा, प्रथम भाग, बिन्दु प्रकाशन, इन्दौर, म0प्र0।
2. दाधीच, पुरू, 2009, कथक नृत्य शिक्षा, द्वितीय भाग, बिन्दु प्रकाशन, इन्दौर, म0प्र0।
3. कर्ण, नागेश्वर लाल, 2011, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, कथक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
5. कथक नृत्य का इतिहास, संगीत- नृत्य अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
6. सिंह, गुरू विक्रम, 1984, नटवरी कथक नृत्य, प्रकाशक- राय राजेश्वर बली, कैसर बाग, लखनऊ, उ0प्र0।
7. शुक्ल, योगमाया, 1987, तबले का उद्गम एवं वादन शैलियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
8. मिस्त्री, आबान ई0, 1984, पखावज एवं तबले के घराने, उद्भव विकास एवं विविध परम्पराएँ, स्वर साधना समिति, मुम्बई, महाराष्ठ।
9. वशिष्ठ, सत्यनारायण, तबले पर दिल्ली और पूरब, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
10. शर्मा, भगवतशरण, 1981, ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
11. पागलदास, रमाशंकर, 1977, मृदंग तबला प्रभाकर, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
12. मिश्र, लालमणि, 2006(संवत्), तबला विज्ञान, गाँधी संगीत विद्यालय, कानपुर, उ0प्र0।
13. परांजपे, श्रीधर शरच्चन्द्र, 1969, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, उ0प्र0।
14. दीक्षित, सुरेन्द्र नाथ,1970, भरत और भारतीय नाट्यकला, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
15. भटनागर, छाया, 1981, भारत के शास्त्रीय नृत्य, यंगमैन एण्ड कंपनी, दिल्ली।
16. Vatsayan, Kapila, 1974, Indian Classical Dance, Publication Division(Ministry of Information and Broadcasting), Delhi.

*Corresponding author.
E-mail address: dwijeshu@yahoo.in